जैन आगमों में समाधिमरण की अवधारणा

अर्धमागधी आगम साहित्य में समाधिमरण की अवधारणा का अति विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अर्धमागधी आगम साहित्य के गन्थों का जो कालक्रम निर्धारित किया है, उसके आधार पर समाधिमरण से सम्बन्धित आगमों को हम निम्न क्रम में रख सकते हैं। अति प्राचीन स्तर के आगम ग्रन्थों में आचाराङ्गसूत्र एवं उत्तराध्ययनसूत्र ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें समाधिमरण के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण मिलता है। आचाराङ्गसूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध का 'विमोक्ष' नामक अष्टम अध्ययन समाधिमरण के तीन प्रकारों— भक्त प्रत्याख्यान, इङ्गितिमरण एवं प्रायोपगमन की विस्तृत चर्चा करता है। इसी प्रकार उत्तराध्ययनसूत्र का पञ्चम "अकाम-मरणीय" अध्ययन भी अकाम-मरण और सकाम-मरण (समाधिमरण) की चर्चा से सम्बन्धित है। इसके साथ ही किंचित् परवर्ती माने गये उत्तराध्ययन के ३६वें अध्ययन में भी समाधिमरण की विस्तृत चर्चा है। इसमें समयावधि की दृष्टि से उत्कृष्ट, मध्यम एवं जघन्य ऐसे तीन प्रकार के समाधिमरणों का उल्लेख है। प्राचीन स्तर के अर्धमागधी आगमों में दशवैकालिक का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके आठवें 'आचार-प्रणिधी' नामक अध्ययन में समाधिमरण के पूर्व की साधना का उल्लेख हुआ है। इसमें कषायों को अल्प करने या उन पर विजय प्राप्त करने का निर्देश है।

इसके अतिरिक्त कालक्रम की दृष्टि से किंचित् परवर्ती माने गये अर्धमागधी आगमों में तृतीय अङ्ग-आगम स्थानाङ्गसूत्र के द्वितीय अध्ययन के चतुर्थ उद्देशक में मरण के विविध प्रकारों की चर्चा के प्रसङ्ग में समाधिमरण के विविध रूपों के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। चतुर्थ अङ्ग-आगम समवायाङ्ग में मरण के सतरह भेदों की चर्चा है। ज्ञातव्य है कि नाम एवं क्रम के कुछ अन्तरों को छोड़कर मरण के इन सतरह भेदों की चर्चा भगवती आराधना में भी मिलती है। इसमें बालमरण, बाल- पण्डितमरण, पण्डितमरण, भक्त-प्रत्याख्यान, इङ्गितिमरण, प्रायोपगमन आदि की चर्चा है। इसी प्रकार पाचवें अङ्ग-आगम भगवतीसूत्र में अम्बड संन्यासी एवं उसके शिष्यों के द्वारा गङ्गा की बालू पर अदत्त जल का सेवन नहीं करते हुए समाधिमरण करने का उल्लेख पाया जाता है। सातवें अङ्ग उपासकदशासूत्र में भगवान् महावीर के १० गृहस्थ उपासकों के द्वारा लिये गये समाधिमरण और उसमें उपस्थित विघ्नों की विस्तृत चर्चा मिलती है। आठवें अङ्ग-आगम अन्तकृतदशासूत्र एवं नवें अङ्ग-आगम अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र में भी अनेक श्रमणों एवं श्रमणियों के द्वारा लिये गये समाधिमरण का उल्लेख मिलता है। अन्तकृतदशासूत्र की विशेषता यह है कि उसमें समाधिमरण लेने वालों की समाधिमरण के पूर्व की शारीरिक स्थिति कैसी हो गई थी, इसका सुन्दर विवरण उपलब्ध है।

उपाङ्ग-साहित्य में मात्र औपपातिकसूत्र और रायप्रश्नीयसूत्र में समाधिमरण ग्रहण करने वाले कुछ साधकों का उल्लेख है, किन्तु इनमें समाधिमरण की अवधारणा के सम्बन्ध में कोई विवेचन उपलब्ध नहीं है। इस सम्बन्ध में जो स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उन्हें अर्धमागधी आगम साहित्य में प्रकीर्णक वर्ग के अन्तर्गत रखा गया है। प्रकीर्णकों में आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, संस्तारक, आराधना-पताका, मरणविभक्ति, मरणसमाधि एवं मरणविशुद्धि प्रमुख हैं। वर्तमान में जो मरणविभक्ति के नाम से प्रकीर्णक उपलब्ध हो रहा है, उसमें मरणविभक्ति सहित मरणविशुद्धि, मरणसमाधि, संलेखनासूत्र, भक्तपरिज्ञा, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, आराधना पताका इन आठ ग्रन्थों को समाहित कर लिया गया है। यद्यपि भक्तपरिज्ञा, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, संलेखनासूत्र, संस्तारक, आराधनापताका आदि ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से भी उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त तन्दुल- वैचारिक नामक प्रकीर्णक के अन्त में भी समाधिमरण का विस्तृत विवरण पाया जाता है। यद्यपि श्वेताम्बर परम्परा में समाधिमरण का विस्तृत विवरण एवं उपदेश देने वाले संस्कृत एवं प्राकृत के परवर्ती आचार्यो के अनेक ग्रन्थ हैं, किन्तु प्रस्तुत विवेचन में हम अपने को मात्र अर्धमागधी आगम साहित्य तक ही सीमित रखेंगे। शौरसेनी आगम साहित्य में समाधिमरण का विवरण प्रस्तुत करने वाले आगमतुल्य जो ग्रन्थ हैं, उनमें मूलाचार एवं भगवती आराधना नामक यापनीय परम्परा के दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनमें मूलाचार समाधिमरण का विवरण प्रस्तुत करने के साथ ही मुनि आचार के अन्य पक्षों पर भी प्रकाश डालता है। यद्यपि इसके संक्षिप्त प्रत्याख्यान एवं बृहत प्रत्याख्यान नामक अध्यायों में आतुरमहा-प्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान नामक प्रकीर्णकों की शताधिक गाथाएँ यथावत अपने शौरसेनी रूपान्तर में मिलती हैं। इसी प्रकार इसमें आवश्यकनिर्युक्ति की भी शताधिक गाथाएँ आवश्यकनिर्युक्ति के नाम से ही मिलती हैं।

जहाँ तक भगवती आराधना का प्रश्न है, उसमें भी अर्धमागधी आगम साहित्य की विशेष रूप से समाधिमरण से सम्बन्धित प्रकीर्णकों की शताधिक गाथाएँ उपलब्ध होती हैं। ज्ञातव्य है कि भगवती आराधना का मूल प्रतिपाद्य समाधिमरण है और यह ग्रन्थ अनेक दृष्टियों से मरणसमाधि, अपरनाम मरणविभक्ति और आराधनापताका से तुलनीय है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि आराधनापताका नामक ग्रन्थ श्वेताम्बर आचार्य वीरभद्र के द्वारा भवगती-आराधना का अनुकरण करके लिखा गया है। यद्यपि यह अभी शोध का विषय है। इसमें भक्तपरिज्ञा, पिण्डनिर्युक्ति और आवश्यकनिर्युक्ति की भी सैकड़ो गाथाएँ उद्धृत की गयी हैं। इसमें कुल १११० गाथाएँ हैं।

इस प्रकार मरणविभक्ति और संस्तारक में समाधिमरण ग्रहण करने वालों के जो विशिष्ट उल्लेख उपलब्ध होते हैं, वे ही उल्लेख भगवती आराधना में भी बहुत कुछ समान रूप से मिलते हैं। आज मरणविभक्ति आदि प्रकीर्णकों का भगवती आराधना से तुलनात्मक अध्ययन बहुत ही अपेक्षित है, क्योंकि यह ग्रन्थ यापनीय परम्परा में निर्मित हुआ है और यापनीय अर्धमागधी आगमों को मान्य करते थे। अत: दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम्पराओं में काफी कुछ आदान-प्रदान हुआ है। इसी प्रकार यापनीय परम्परा के ग्रन्थ बृहद्कथाकोश में भी मरणविभक्ति, भक्तपरिज्ञा, संस्तारक आदि की अनेक कथाएँ संकलित हैं। मेरी दृष्टि में बृहद्कथाकोश की कथाओं का मूल स्रोत चाहे प्रकीर्णक ग्रन्थ रहे हों, किन्तु ग्रन्थकार ने भगवती आराधना की कथाओं का अनुकरण करके ही यह ग्रन्थ लिखा हैं। आज आवश्यकता है कि दोनों परम्पराओं के समाधिमरण सम्बन्धी इन ग्रन्थों एवं उनकी कथाओं का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत करने की।

यद्यपि मैं इस आलेख में तुलनात्मक अध्ययन को प्रस्तुत करना चाहता था, किन्तु समय सीमा को ध्यान में रखकर वर्तमान में यह सम्भव नहीं हो सका है।

समाधिमरण की यह अवधारणा अति प्राचीन है। भारतीय संस्कृति की श्रमण और ब्राह्मण— इन दोनों परम्पराओं में इसके उल्लेख मिलते हैं, जिसकी विस्तृत चर्चा हमनें 'समाधिमरण (मृत्युवरण) : एक तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक अध्ययन' नामक लेख में की है। वस्तुत: यहाँ हमारा विवेच्य मात्र अर्धमागधी आगम है। इनमें आचाराङ्गसूत्र प्राचीन एवं प्रथम अङ्ग-आगम है। आचाराङ्गसूत्र के अनुसार समत्व या वीतरागता की साधना ही धर्म का मूलभूत प्रयोजन है। आचाराङ्गकार की दृष्टि में समत्व या वीतरागता की उपलब्धि में बाधक तत्त्व ममत्व है। इस ममत्व का घनीभूत केन्द्र व्यक्ति का अपना शरीर होता है। अत: आचाराङ्गकार निर्ममत्व की साधना हेतु देह के प्रति निर्ममत्व की साधना को आवश्यक माना है। समाधिमरण देह के प्रति निर्ममत्व की साधना का ही प्रयास है। यह न तो आत्महत्या है और न जीवन से भागने का प्रयत्न। अपितु जीवन के द्वार पर दस्तक दे रही अपरिहार्य बनी मृत्यु का स्वागत है। वह देह के पोषण के प्रयत्नों का त्याग करके देहातीत होकर जीने की एक कला है।

आचाराङ्गसूत्र और समाधिमरण

आचाराङ्गसूत्र में जिन परिस्थितियों में समाधिमरण की अनुशंसा की गयी है, वे विशेष रूप से विचारणीय हैं। सर्वप्रथम तो आचाराङ्ग में समाधिमरण का उल्लेख उसके प्रथम श्रुतस्कन्ध के विमोक्ष नामक अष्टम अध्ययन में हुआ है। यह अध्ययन विशेष रूप से शरीर, आहार, वस्त्र आदि के प्रति निर्ममत्व एवं उनके विसर्जन की चर्चा करता है। इसमें वस्त्र एवं आहार के विजर्सन की प्रक्रिया को समझाते हुए ही अन्त में देह-विसर्जन की साधना का उल्लेख हुआ है। आचाराङ्गसूत्र समाधिमरण किन स्थितियों में लिया जा सकता है, इसकी संक्षिप्त किन्तु महत्त्वपूर्ण विवेचना प्रस्तुत करता है। इसमें समाधिमरण स्वीकार करने की तीन स्थितियों का उल्लेख है—

१. जब शरीर इतना अशक्त व ग्लान हो गया हो कि व्यक्ति संयम के नियमों का पालन करने में असमर्थ हो और मुनि के आचार नियमों को भंग करके ही जीवन बचाना सम्भव हो, तो ऐसी स्थिति में यह कहा गया है कि आचार नियमों के उल्लंघन की अपेक्षा देह का विसर्जन ही नैतिक है। आचार-मर्यादा का उल्लंघन करके जीवन का रक्षण वरेण्य नहीं है। उसमें कहा गया है कि जब साधक यह जाने कि वह निर्बल और मरणान्तिक रोग से आक्रान्त हो गया है, नियम या मर्यादा पूर्वक आहार आदि प्राप्त करने में असमर्थ है, तो वह आहारादि का परित्याग कर शरीर के पोषण के प्रयत्नों को बन्द कर दे। इससे देह के प्रति निर्ममत्व की साधना पूर्ण होती है।

२. जब व्यक्ति को लगे कि अपनी वृद्धावस्था अथवा असाध्य रोग के कारण उसका जीवन पूर्णत: दूसरों पर निर्भर हो गया है, वह संघ के लिए भार स्वरूप बन गया है तथा अपनी साधना करने में भी असमर्थ हो गया है तो ऐसी स्थिति में वह आहारादि का त्याग करके देह के प्रति निर्ममत्व की साधना करते हुए देह का विसर्जन कर सकता है।

३. इसी प्रकार साधक को जब यह लगें कि सदाचार या ब्रह्मचर्य का खण्डन किए बिना जीवन जीना सम्भव नहीं है, अर्थात् चरित्रनाश और जीवित रहने में एक ही विकल्प सम्भव है तो वह तत्काल भी श्वास निरोध आदि करके अपना देहपात कर सकता है। ज्ञातव्य है कि यहाँ मूल-पाठ में शीत-स्पर्श है, जिसका टीकाकारों ने ब्रह्मचर्य के भङ्ग का अवसर ऐसा अर्थ किया है, किन्तु मूल-पाठ और पूर्वप्रसङ्ग को देखते हुए इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि जिस मुनि ने अचेलता को स्वीकार कर लिया है, वह शीत सहन न कर पाने की स्थिति में चाहे देह त्याग कर दे, किन्तु नियम भङ्ग न करे।

इससे यह फलित होता है कि आचाराङ्गकार न तो जीवन को अस्वीकार ही करता और न वह जीवन से भागने की बात कहता है। वह तो मात्र यह प्रतिपादित करता है कि जब मृत्यु जीवन के द्वार पर दस्तक दे रही हो और आचार-नियम अर्थात् ली गई प्रतिज्ञा भङ्ग किए बिना जीवन जीना सम्भव नहीं है, तो ऐसी स्थिति में मृत्यु का वरण करना ही उचित है। इसी प्रकार दूसरों पर भार बनकर जीना अथवा जब शरीर व्यक्तिगत साधना अथवा समाज सेवा दोनों के लिए सार्थक नहीं रह गया हो, ऐसी स्थिति में भी येनकेन-प्रकारेण शरीर को बचाने के प्रयत्न की अपेक्षा मृत्यु का वरण ही उचित है। जब साधक को यह लगे कि सदाचार और मुनि आचार के नियमों का भङ्ग करके आहार एवं औषधि के द्वारा तथा शीतनिवारण के लिए वस्त्र अथवा अग्नि आदि के उपयोग द्वारा ही शरीर को बचाया जा सकता है अथवा बह्मचर्य को भङ्ग करके ही जीवित रहा जा सकता है तो उसके लिए मृत्यु का वरण ही उचित है।

आचाराङ्गकार ने नैतिक मूल्यों के संरक्षण और जीवन के संरक्षण में उपस्थित विकल्प की स्थिति में मृत्यु के वरण को ही वरेण्य माना है। ऐसी स्थिति में वह स्पष्ट निर्देश देता है कि ऐसा व्यक्ति मृत्यु का वरण कर ले। यह उसके लिए काल-मृत्यु ही है, क्योंकि इसके द्वारा वह संसार का अन्त करने वाला होता है। वह स्पष्ट रूप से कहता है कि यह मरण विमोह आयतन, हितकर, सुखकर, कालोचित, नि:श्रेयस और भविष्य के लिए कल्याणकारी होता है। आचाराङ्गसूत्र में समाधिमरण के तीन रूपों का उल्लेख हुआ— भक्तप्रत्याख्यान, इङ्गितिमरण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रायोपगमन। उसमें समाधिमरण के लिए दो तथ्य आवश्यक माने गए हैं— पहला कषायों का कृशीकरण और दूसरा शरीर का कृशीकरण। इसमें भी मुख्य उद्देश्य तो कषायों का कृशीकरण है। भक्तपरिज्ञा में प्रथम तो मुनि के लिए कल्प का विचार किया गया है और उसके अन्त में यह बताया गया है कि अकल्प का सेवन करने की अपेक्षा शरीर का विसर्जन कर देना ही उचित है। उसमें कहा गया है कि जब भिक्षु को यह अनुभव हो कि मेरा शरीर अब इतना दुर्बल अथवा रोग से आक्रान्त हो गया है कि गृहस्थों के घर भिक्षा हेतु परिभ्रमण करना मेरे लिए सम्भव नहीं है, साथ ही मुझे गृहस्थ के द्वारा मेरे सम्मुख लाया गया आहार आदि ग्रहण करना योग्य नहीं है। ऐसी स्थिति में एकाकी साधना करने वाले जिनकल्पी मुनि के लिए आहार का त्याग करके संथारा ग्रहण करने का विधान है। यद्यपि आचाराङ्गसूत्र के अनुसार संघस्थ मुनि की बीमारी अथवा वृद्धावस्थाजन्य शारीरिक दुर्बलता की स्थिति में आहारादि से एक-दूसरे का उपकार अर्थात् सेवा कर सकते हैं, किन्तु इस सम्बन्ध में भी चार विकल्पों का उल्लेख हुआ है —

१. कोई भिक्षु यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं (साधर्मिक भिक्षुओं के लिए) आहार आदि लाऊँगा और (उनके द्वारा) लाया हुआ स्वीकार भी करुंगा।

अथवा

२. कोई यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं (दूसरों के लिए) आहार आदि नहीं लाऊँगा, किन्तु (उनके द्वारा) लाया हुआ स्वीकार करूँगा।

अथवा

३. कोई भिक्षु यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं (दूसरों के लिए) आहार आदि लाऊंगा, किन्तु उनके द्वारा लाया स्वीकार नहीं करूंगा।

अथवा

४. कोई भिक्षु यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं न तो (दूसरों के लिए) आहार आदि लाऊँगा और न (उनके द्वारा) लाया हुआ स्वीकार करूँगा।

उपरोक्त चार विकल्पों में से जो भिक्षु प्रथम दो विकल्प स्वीकार करता है, वह आहारादि के लिए संघस्थ मुनियों की सेवा ले सकता है। किन्तु जो अन्तिम दो विकल्प स्वीकार करता है, उसके लिए आहारादि के लिये दूसरों की सेवा लेने में प्रतिज्ञा भङ्ग का दोष आता है। ऐसी स्थिति में आचाराङ्गकार का मन्तव्य यही है कि प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं करनी चाहिये, भले ही भक्तप्रत्याख्यान कर देह त्याग करना पड़े। आचाराङ्गकार के अनुसार ऐसी स्थिति में जब भिक्षु को यह संकल्प उत्पन्न हो कि मैं इस समय संयम-साधना के लिए इस शरीर को वहन करने में ग्लान (असमर्थ) हो रहा हूँ, तब वह क्रमश: आहार का संवर्त्तन (संक्षेप) करे। आहार का संक्षेप कर कषायों (क्रोध, मान, माया और लोभ) को कृश करे। कषायों को कृश कर समाधिपूर्ण भाव वाला शरीर और कषाय दोनों ओर से कृश बना हुआ वह भिक्षु फल का वस्थित हो समाधिमरण के लिए उत्थित (प्रयत्नशील) होकर शरीर का उत्सर्ग करे।

संथारा ग्रहण करने का निश्चय कर लेने के पश्चात् वह किस प्रकार समाधिमरण ग्रहण करे इसका उल्लेख करते हुए आचाराङ्गकार कहता है कि ऐसे भिक्षु ग्राम, नगर, कर्वट, आश्रम आदि में जाकर घास की याचना करे और उसे प्राप्त कर गांव के बाहर एकांत में जाकर जीव-जन्तु, बीज, हरित आदि से रहित स्थान को देखकर घास का बिस्तर तैयार करे और उस पर स्थित होकर इत्वरिक अनशन अथवा प्रायोपगमन स्वीकार करें।

ज्ञातव्य है कि आचाराङ्गकार भक्तप्रत्याख्यान, इङ्गितिमरण और प्रायोपगमन ऐसे तीन प्रकार के समाधिमरण का उल्लेख करता है। भक्तप्रत्याख्यान में मात्र आहारादि का त्याग किया जाता है, किन्तु शारीरिक हलन-चलन और गमनागमन की कोई मर्यादा निश्चित नहीं की जाती है। इङ्गितमरण में आहार त्याग के साथ ही साथ शारीरिक हलन-चलन और गमनागमन का एक क्षेत्र निश्चित कर लिया जाता है और उसके बाहर गमनागमन का त्याग कर दिया जाता है। प्रायोपगमन या पादोपगमन में आहार आदि के त्याग के साथ-साथ शारीरिक क्रियाओं का निरोध करते हुए मृत्यु-पर्यन्त निश्चल रूप से लकड़ी के तख्ते के समान स्थिर पड़े रहना पड़ता है। इसीलिए आचाराङ्गकार ने प्रायोपगमन संथारे के प्रत्याख्यान में स्पष्ट रूप से यह लिखा है कि काय, योग एवं ईर्या का प्रत्याख्यान करें। वस्तुत: यह तीनों संथारे की क्रमिक अवस्थाएँ हैं।

आचाराङ्गसूत्र में समाधिमरण का विवरण

क्रम से निर्ममत्व की स्थिति को प्राप्त धैर्यवान्, आत्मनिग्रही और गतिमान साधक इस अद्वितीय समाधिमरण की साधना हेतु तत्पर हो। वह धर्म के पारगामी ज्ञानपूर्वक अनुक्रम से दोनों ही प्रकार के आरम्भ का (हिंसा का) परित्याग कर दें। वह कषायों को कृश करते हुए आहार की मात्रा को भी अल्प करें और परिषहों को सहन करें। इस प्रकार करते हुए जब अति ग्लान हो जाय तो आहार का भी त्याग कर दें। ऐसी स्थिति में न तो जीवन की आकांक्षा रखे और न मरण की, अपितु जीवन एवं मरण दोनों में ही आसक्त न हो। वह निर्जरापेक्षी मध्यस्थ समाधि-भाव का अनुपालन करे तथा राग-द्वेष आदि आन्तरिक परिग्रह और शरीर आदि बाह्य परिग्रह का त्याग कर शुद्ध अध्यात्म का अन्वेषण करे।

यदि उसे अपने साधनाकाल में किसी भी रूप में आयुष्य के विनाश का कोई कारण जान पड़े, तो वह शीघ्र ही समाधिमरण का प्रयत्न करे। ग्राम अथवा अरण्य में जहाँ हरित एवं प्राणियों आदि का अभाव (अल्पता) हो, उस स्थण्डिल भूमि पर तृण का बिछौना तैयार करे और वहाँ निराहार होकर शान्त भाव से लेट जाये। मनुष्य कृत अथवा अन्य किसी प्रकार के परीषह से आक्रान्त होने पर भी मर्यादा का उल्लङ्घन न करे तथा परिषहों को समभावपूर्वक सहन करे। आकाश में विचरण करने वाले पक्षी एवं रेंगने वाले प्राणी यदि उसके शरीर का मांस नोंचे, रक्त पीये तो भी न उन्हें मारे और न उनका निवारण करे तथा न उस स्थान से उठकर अन्यत्र जाये, अपितु यह विचार करें कि ये प्राणी मेरे शरीर का ही नाश कर रहे हैं, मेरे ज्ञानादि गुणों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का नहीं। वह आस्रवों से रहित एवं आत्मतुष्ट हो उस पीड़ा को समभाव से सहन करे। ग्रन्थियों अर्थात् अन्तर-बाह्य परिग्रह से रहित मृत्यु के अवसर पर पारङ्गत भिक्षु के इस समाधिमरण को संयमी जीवन के लिए अधिक श्रेष्ठ माना गया है।

भक्तप्रत्याख्यान के अतिरिक्त समाधिमरण का एक रूप इङ्गितिमरण बताया है। इसमें साधक दूसरों से सेवा लेने का त्रिविध रूप से परित्याग कर देता है, ऐसा भिक्षु हरियाली पर नहीं सोए अपितु जीवों से रहित स्थण्डिल भूमि पर ही सोए। वह अनाहार भिक्षु देह आदि के प्रति ममत्व का विसर्जन करके परीषहों से आक्रान्त होने पर उन्हें समभाव से सहन करे। इन्द्रियों के ग्लान हो जाने पर वह मुनि समितिपूर्वक ही अपने हाथ-पैर आदि का संकोच-विस्तार करे, क्योंकि जो अचल एवं समभाव से युक्त होता है वह निन्दित नहीं होता। वह जब लेटे-लेटे या बैठे-बैठे थक जाय तो शरीर के संधारण के लिए थोड़ा गमनागमन करे या हाथ-पैरों को हिलाए, किन्तु सम्भव हो तो अचेतनवत् निश्चेष्ट हो जाये। इस अद्वितीय मरण पर आसीन व्यक्ति उन काष्ठ-स्तम्भों या फलक आदि का सहारा न ले, जो दीमक आदि से युक्त हो अथवा वर्जित हो। जो साधक इङ्गितिमरण से भी उच्चतर प्रायोपगमन या पादोपगमन संथारे को ग्रहण करता है, वह सभी अङ्गों का निरोध करके अपने स्थान से चलित नहीं होता है— यह प्रायोपगमन, भक्त प्रत्याख्यान और इङ्गितिमरण की अपेक्षा उत्तम स्थान है। ऐसा भिक्षु जीव-जन्तु से रहित भूमि को देखकर वहाँ निश्चेष्ट होकर रहे और वहाँ अपने शरीर को स्थापित कर यह विचार करे कि जब शरीर ही मेरा नहीं है तो फिर मुझे परीषह या पीड़ा कैसी? वह संसार के सभी भोगों को नश्वर जानकर, उनमें आसक्त न हो। देवों द्वारा निमन्त्रित होने पर वह देव माया पर श्रद्धा न करे। सभी भोगों में अमूर्च्छित होकर मृत्यु के अवसर का पारगामी वह तितिक्षा को ही परम हितकर जानकर निर्ममत्वभाव को अन्यतम साध्य माने।

उत्तराध्ययनसूत्र और समाधिमरण

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचाराङ्गसूत्र में समाधिमरण के प्रकार, उसकी प्रक्रिया तथा उसे किन स्थितियों में ग्रहण किया जा सकता है, इसकी विस्तृत चर्चा है। आचाराङ्गसूत्र के पश्चात् प्राचीन स्तर के अर्धमागधी आगम उत्तराध्ययन में भी समाधिमरण का विवरण उसके ५वें एवं ३६वें अध्याय में उपलब्ध होता है। उसके पाँचवें अध्याय में सर्वप्रथम मृत्यु के दो रूपों की चर्चा है— १. अकाम-मरण और २. सकाम-मरण। उसमें यह बताया गया है कि अकाम-मरण बार-बार होता है— जबकि सकाम-मरण एक ही बार होता है। ज्ञातव्य है कि यहाँ अकाम-करण का तात्पर्य कामना से रहित मरण न होकर आत्म पुरुषार्थ से रहित निरुद्देश्य या निष्प्रयोजनपूर्वक मरण से है। इसी प्रकार सकाम-मरण का तात्पर्य पुरुषार्थ या साधना से युक्त सोद्देश्यमरण या मुक्ति के प्रयोजनपूर्वक मरण से है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार अकाम-करण करने वाला व्यक्ति संसार में आसक्त होकर अनाचार का सेवन करता है और काम-भोगों के पीछे भागता है, ऐसा व्यक्ति मृत्यु के समय भय से संत्रस्त होता है और हारने वाले धूर्त जुआरी की तरह शोक करता अकाम-मरण को अर्थात् निष्प्रयोजन मरण को प्राप्त होता है, जबकि सकाम-मरण पण्डितों को प्राप्त होता है। संयत जितेन्द्रिय पुण्यात्माओं को ही अति प्रसन्न अर्थात् निराकुल एवं आघातरहित यह मरण प्राप्त होता है। ऐसा मरण न तो सभी भिक्षुओं को मिलता है, न सभी गृहस्थों को। जो भिक्षु हिंसा आदि से निवृत्त होकर संयम का अभ्यास करते हैं, उन्हें ही ऐसा सकाम-मरण प्राप्त होता है।

उत्तराध्ययनसूत्र यह स्पष्ट निर्देश देता है कि मेधावी साधक बालमरण व पण्डितमरण की तुलना करके सकाम-मरण को स्वीकार कर मरण काल में क्षमा और दया धर्म से युक्त हो, तथाभूत आत्मभाव में मरण करे। जब मरण काल उपस्थित हो तो जिस श्रद्धा से प्रव्रज्या स्वीकार की थी, उसी श्रद्धा व शान्त भाव से शरीर के भेद अर्थात् देहपात की प्रतिज्ञा करे। मृत्यु के समय आने पर तीन प्रकार के एक से एक श्रेष्ठ समाधिमरणों से शरीर का परित्याग करे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तराध्ययनसूत्र के पञ्चम अध्याय में भी उन्हीं तीनों प्रकार के समाधिमरणों का उल्लेख है जिसकी चर्चा हम आचाराङ्गसूत्र के सम्बन्ध में कर चुके हैं। फिर भी ज्ञातव्य है कि उत्तराध्ययनसूत्र का यह विवरण समाधिमरण के हेतु प्रेरणा प्रदान करने की ही दृष्टि से है। दूसरे शब्दों में यह मात्र उपदेशात्मक विवरण है। इसमें किन परिस्थितियों में समाधिमरण ग्रहण किया जाय इसकी चर्चा नहीं है। मात्र यत्र-तत्र समाधिमरण के कुछ सङ्केत ही हैं। उत्तराध्ययनसूत्र में समाधिमरण या संलेखना के काल आदि के सम्बन्ध में और उसकी प्रक्रिया के सम्बन्ध में जो उल्लेख है वह उसके ३६वें अध्याय में इस प्रकार से वर्णित है—

अनेक वर्षों तक श्रामण्य का पालन करके मुनि इस अनुक्रम से आत्मा की संलेखना के विकारों को क्षीण करे। उत्कृष्ट संलेखना बारह वर्ष की होती है, मध्यम एक वर्ष की और जघन्य छह मास की होती है। प्रथम चार वर्षों में दुग्ध आदि विकृतियों का निर्यूहण-त्याग करें, दूसरे चार वर्षों में विविध प्रकार के तप करे, फिर दो वर्षों तक एकान्तर तप (एक दिन उपवास और फिर एक दिन भोजन) करें। भोजन के दिन आचाम्ल करे। उसके बाद ग्यारहवें वर्ष में पहले छह महिनों तक कोई भी अतिविकृष्ट (तेला, चौला आदि) तप न करे। उसके बाद छह महीने तक विकृष्ट तप करे। इस पूरे वर्ष में परिपित (पारणों के दिन) आचाम्ल करे। बारहवें वर्ष में एक वर्ष तक कोटि सहित अर्थात् निरन्तर, आचाम्ल करके फिर मुनि पक्ष या एक मास का आहार से तप अर्थात् अनशन करे। कादर्पी, अभियोगी, किल्बिषिकी, मोही और आसुरी भावनाएँ दुर्गति देने वाली हैं। ये मृत्यु के समय में संयम की विराधना करती हैं। अत: जो मरते समय मिथ्या-दर्शन में अनुरक्त है, निदान से युक्त है और हिंसक है, उसे बोधि बहुत दुर्लभ है। जो सम्यग्दर्शन में अनुरक्त है, निदान से रहित है, शुक्ल-लेश्या में अवगाढ़- प्रविष्ट है, उसे बोधि सुलभ है। जो जिन वचन में अनुरक्त है, जिन वचनों का भावपूर्वक आचरण करता है, वह निर्मल और रागादि से असंक्लिष्ट होकर परीत संसारी (परिमित संसार वाला) होता हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य अङ्ग-आगम और समाधिमरण

आचाराङ्गसूत्र व उत्तराध्ययनसूत्र के पश्चात् अर्धमागधी में स्थानाङ्गसूत्र और समवायाङ्गसूत्र में समाधिमरण से सम्बन्धित मात्र कुछ सङ्केत हैं। स्थानाङ्गसूत्र (२/४) में दो-दो के वर्गों में विभाजित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर द्वारा अनुमोदित मरणों का उल्लेख है। महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के मरण कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अननुमोदित नहीं किये हैं— वलन्मरण और वशार्तमरण। इसी प्रकार निदानमरण और तद्भवमरण, गिरिपतन और तरुपतनमरण, जलप्रवेशमरण और अग्निप्रवेशमरण, विषभक्षणमरण और शास्त्रावपातनमरण। ये दो-दो प्रकार के मरण श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए श्रमण भगवान् महावीर ने कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अनुमोदित नहीं किये हैं। किन्तु कारण-विशेष होने पर वैहायस (वैरवानस) और गृद्धपृष्ठ ये दो मरण अनुमोदित किये हैं। श्रमण महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के मरण सदा वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अनुमोदित किये हैं— प्रायोपगमनमरण और भक्त प्रत्याख्यानमरण। प्रायोपगमनमरण दो प्रकार का कहा गया है— निर्हारिम और अनिर्हारिम। प्रायोपगमनमरण नियमतः अप्रतिकर्म होता है। भक्तप्रत्याख्यानमरण दो प्रकार का कहा गया है— निर्हारिम और अनिर्हारिम। भक्तप्रत्याख्यानमरण नियमतः सप्रतिकर्म होता है।

समवायाङ्गसूत्र (समवाय १७) में मरण के निम्न सतरह प्रकारों का उल्लेख हुआ है —

१. आवीचिमरण, २. अवधिमरण, ३. आत्यान्तिकमरण, ४. वलन्मरण, ५. वशार्तमरण, ६. अन्तःशल्यमरण, ७. तद्भव मरण, ८. बालमरण, ९. पण्डितमरण, १०. बालपण्डितमरण, ११. छद्मस्थ-मरण, १२. केवलिमरण, १३. वैखानसमरण, १४. गृद्धपृष्टमरण, १५. भक्तप्रत्याख्यानमरण, १६. इङ्गितिमरण एवं १७. पादोपगमनमरण।

इनमें से बालपण्डितमरण, पण्डितमरण, छद्मस्थमरण, केवलीमरण, भक्तप्रत्याख्यानमरण, इङ्गितिमरण व प्रायोपगमनमरण का सम्बन्ध समाधिमरण से है। किन्हीं स्थितियों में वैखानसमरण, गृद्धपृष्टमरण को जैन परम्परा में भी उचित माना गया है। किन्तु ये दोनों अपवादिक स्थिति में ही उचित माने गये हैं, जैसे जब ब्रह्मचर्य के पालन और जीवन के संरक्षण में एक ही विकल्प हो, तो ऐसी स्थिति में वैखानसमरण द्वारा शरीर त्याग को उचित माना गया है। ज्ञातव्य है कि भगवती आराधना में भी समवायाङ्ग के समान ही मरण के उपर्युक्त सतरह प्रकारों का उल्लेख है। यद्यपि कहीं-कहीं उनके नाम एवं क्रम में अन्तर दिखायी देता है। उदाहरणार्थ समवायाङ्ग में छद्मस्थमरण का उल्लेख है जबकि भगवती आराधना में इसका उल्लेख नहीं है। इसके स्थान पर उसमें ओसन्नमरण का उल्लेख है। समवायाङ्गसूत्र के पश्चात् ज्ञाताधर्मकथासूत्र, उपासकदशासूत्र, अन्तकृत्शासूत्र, अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र तथा विपाकदशा-सूत्र, आदि अङ्ग आगमों में जीवन के अन्तिम काल में संलेखना द्वारा शरीर त्यागने वाले साधकों की कथाएँ हैं। इसमें भगवतीसूत्र में अम्बड़ संन्यासी और उसके ५०० शिष्यों के द्वारा अदत्त जल का सेवन नहीं करते हुए गङ्गा की बालू पर समाधिमरण लेने का उल्लेख है। उपासकदशासूत्र में भगवान् महावीर के आनन्द, कामदेव, सकडालपुत्र, चुलिनीपिता आदि दश गृहस्थ उपासकों द्वारा समाधिमरण ग्रहण करने और उनमें विघ्नों के उपस्थित होने तथा आनन्द को इस अवस्था में विस्तृत अवधिज्ञान उत्पन्न होने, गौतम के द्वारा आनन्द से क्षमा-याचना करने आदि के उल्लेख हैं। इसी प्रकार अन्तकृत्दशासूत्र में कुछ श्रमणों और आर्यिकाओं द्वारा समाधिमरण स्वीकार करने और उस दशा में कैवल्य एवं मोक्ष प्राप्त करने के निर्देश हैं। किन्तु विस्तार भय से इन सबकी चर्चा में जाना हम यहाँ आवश्यक नहीं समझते। इतना अवश्य ज्ञातव्य है कि इनमें से कुछ कथाओं के निर्देश श्वेताम्बर परम्परा में मरणविभक्ति में तथा अचेल परम्परा के भगवती आराधना में भी पाये जाते हैं। यहाँ हम केवल अन्तकृत्दशासूत्र (वर्ग८, अध्याय१) का वह उल्लेख करना चाहेंगे जिसमें साधक किस स्थिति में समाधिमरण ग्रहण करता था, इसका सुन्दर चित्रण किया गया है —

"तत्पश्चात् काली आर्या, उस उराल-प्रधान, विपुल, दीर्घकालीन, विस्तीर्ण, सश्रीक-शोभासम्पन्न, गुरु द्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्नसाध्य, बहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी, निरोगता-जनक, शिव-मुक्ति के कारण-भूत, धन्य, माङ्गल्य, पापविनाशक, उदग्र-तीव्र, उदार-निष्काम होने के कारण औदार्य वाले, उत्तम, अज्ञान अन्धकार से रहित और महान् प्रभाव वाले, तप-कर्म से शुष्क, नीरस शरीर वाली, रुक्ष, मांस रहित और नसों से व्याप्त हो गयी थी। जैसे कोई कोयलों से भरी गाड़ी हो, सूखी लकड़ियों से भरी गाड़ी हो, पत्तों से भरी गाड़ी हो, धूप में डालकर सुखाई हो अर्थात् कोयला, लकड़ी पत्ते आदि खूब सूखा लिये गये हों और फिर गाड़ी में भरे गये हों, तो वह गाड़ी खड़-खड़ आवाज करती हुई चलती है और ठहरती है, उसी प्रकार काली आर्या हाड़ों की खड़-खड़ाहट के साथ चलती थी और खड़-खड़ाहट के साथ ठहरती थी। वह तपस्या से तो उपचित-वृद्धि को प्राप्त थी, मगर मांस और रुधिर से अपचित-ह्रास को प्राप्त हो गयी थी। भस्म के समूह से आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या के तेज से देदीप्यमान वह तपस्तेज की लक्ष्मी से अतीव शोभायमान हो रही थी।

एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में काली आर्या के हृदय में स्कन्दमुनि के समान यह विचार उत्पन्न हुआ— "इस कठोर तपसाधना के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है। तथापि जब तक मेरे इस शरीर में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार-पराक्रम है, मन में श्रद्धा, धैर्य एवं वैराग्य है तब तक मेरे लिये उचित है कि कल सूर्योदय होने के पश्चात् आर्या चन्दना से पूछकर, उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर, संलेखना झूषणा का सेवन करती हुई भक्तपान का त्याग करके, मृत्यु के प्रति निष्काम होकर विचरण करूँ।" ऐसा सोचकर वह अगले दिन सूर्योदय होते ही जहाँ आर्या चन्दना थीं वहाँ आई और वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोली— "हे आर्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं संलेखना झूषणा करती हुई विचरना चाहती हूँ।" आर्या चन्दना ने कहा— "हे देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो। सत्कार्य में विलम्ब न करो।" तब आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर काली आर्या संलेखना झूषणा ग्रहण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करके यावत् विचरने लगी। काली आर्या ने आर्या चन्दना के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अङ्गों का अध्ययन किया और पूरे आठ वर्ष तक चारित्रधर्म का पालन करके एक मास की संलेखना से आत्मा को झोषित कर साठ भक्त का अनशन पूर्ण कर, जिस हेतु से संयम ग्रहण किया था यावत् उसको अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक पूर्ण किया तथा सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्तकृत् दशा में जब शरीर पूर्णतया ग्लान हो जाय, ऐसी स्थिति में ही समाधिमरण लेने का उल्लेख है।

प्रकीर्णक और समाधिमरण

श्वेताम्बर परम्परा में समाधिमरण से सम्बन्धित जो ग्रन्थ लिखे गये हैं, उनमें चन्द्रवेध्यक, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, संस्तारक, भक्तपरिज्ञा और मरणविभक्ति आदि प्रमुख हैं। चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक का अन्तिम लक्ष्य तो समाधिमरण का निरूपण ही है, किन्तु उसकी पूर्व भूमिका के रूप में विनय गुण, आचार्य गुण, विनयनिग्रह गुण, ज्ञान गुण और चरण गुणद्वार नामक प्रथम पाँच द्वारों में समाधिमरण से सम्बन्धित विषयों का विवरण दिया गया है और अन्त में छठां समाधिमरण द्वार है। इस प्रकीर्णक में १७५ गाथाएँ हैं, किन्तु कुछ प्रतियों में ७५ गाथाएँ और भी मिलती हैं, जिनमें से अधिकांश गाथायें आतुरप्रत्याख्यान में यथावत् उपलब्ध होती हैं। ग्रन्थ के अन्त में मरण गुणद्वार नामक सप्तम द्वार में सबसे अधिक ५८ गाथाएँ हैं। इसमें अकृतयोगी और कृत-योग के माध्यम से यह बताया गया है कि जो व्यक्ति विषय-वासनाओं के वशीभूत होकर जीवन जीता है, वह अकृत-योग है तथा जो इसके विपरीत वासनाओं एवं कषायों पर नियन्त्रण कर जीवन जीता है वह कृतयोगी है और जो कृतयोगी है, उसी का मरण सार्थक है या समाधिमरण है। इसमें किस प्रकार की जीवनदृष्टि व आचार-विचार का पालन करते हुए व्यक्ति समाधिमरण को प्राप्त कर सकता है, इसका विस्तृत विवेचन है। इसमें कहा गया है कि जो सम्यक्त्व से युक्त लब्धबुद्धि साधक आलोचना करके मरण को प्राप्त होता है, उसका मरण शुद्ध होता है इसके विपरीत जो इन्द्रिय सुखों की ओर दौड़ता है वह अकृत परिक्रम जीव आराधना काल में विचलित हो जाता है। जिस प्रकार लक्ष्य भेद का साधक अपना ध्यान बाह्य विषयों की ओर न लगाकर केवल लक्ष्य की ओर रखता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति राग-द्वेष का निग्रह करता है, त्रिदण्ड और चार कषायों से अपनी आत्मा को लिप्त नहीं होने देता, पाँचों इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखता है, वह छह जीव निकाय की हिंसा एवं सात भयों से रहित मार्दव भाव से युक्त होता है, आठ मदों से रहित होकर नौ प्रकार से ब्रह्मचर्य का पालन करता है तथा दस धर्म का पालन करते हुए शुक्ल ध्यान के अभिमुख होता है और वही व्यक्ति मरणकाल में कृतयोगी होता है। जो व्यक्ति जिन उपदिष्ट समाधिमरण की आराधना करता है, वह धूत क्लेश होकर भावशल्यों का निवारण करके शुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है। जिस प्रकार सकुशल वैद्य भी अपनी व्याधि को अन्य से कहकर उसकी चिकित्सा करवाता है, उसी प्रकार साधु भी गुरु के समीप अपने दोषों की आलोचना करके मृत्यु के समय शुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है। जो साधु मरणकाल में आसक्त नहीं होता, वही आराधक है। इस प्रकार चन्द्रवेध्यक मुख्य रूप से समाधिमरण करने वाले साधक की जीवन दृष्टि कैसी होनी चाहिए, इसकी चर्चा करता है।

चन्द्रवेध्यक के पश्चात् जो प्रकीर्णक ग्रन्थ पूर्णत: समाधिमरण की अवधारणा को ही अपना विषय बनाते हैं, उनमें आतुरप्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान प्रमुख हैं।

ज्ञातव्य है कि आतुरप्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान की लगभग एक सौ गाथाएँ मूलाचार के संक्षिप्त प्रत्याख्यान और बृहद्-प्रत्याख्यान नामक अध्ययनों में उपलब्ध होती हैं। आतुरप्रत्याख्यान के नाम से तीन प्रकीर्णक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। एक आतुरप्रत्याख्यान में तीस गाथाएँ और कुछ गद्य भाग हैं, जबकि दूसरे में चौतीस गाथाएँ हैं और तीसरे में एकहत्तर गाथाएँ हैं। वैसे इन सभी आतुरप्रत्याख्यान नामक प्रकीर्णकों का विषय समाधिमरण ही है। प्रथम आतुरप्रत्याख्यान में पञ्चमङ्गल के पश्चात् अरिहंत आदि से क्षमा-याचना और उत्तम अर्थ अर्थात् समाधिमरण की आराधना के लिए १८ पाप स्थानों का और शरीर के संरक्षण का परित्याग तथा अन्त में सागार एवं निरागार समाधिमरण के प्रत्याख्यान की चर्चा है। इसके अन्त में संसार के सभी प्राणियों से क्षमा-याचना के सन्दर्भ में १३ गाथाएँ हैं और अन्त में एकत्व भावना का उल्लेख है। जिसमें कहा गया है कि "ज्ञान-दर्शन से युक्त एक मेरी आत्मा ही शाश्वत है, शेष सभी बाह्य पदार्थ सांयोगिक हैं। सांयोगिक पदार्थों के प्रति ममत्व ही दु:ख परम्परा का कारण है। अत: त्रिविध रूप से संयोग का परित्याग कर देना चाहिए।" ज्ञातव्य है कि ये गाथाएँ भगवती आराधना एवं मूलाचार के साथ-साथ कुंदकुंद के ग्रन्थों में भी यथावत रूप में उपलब्ध होती हैं। आतुरप्रत्याख्यान नामक दूसरे ग्रन्थ में अविरति का प्रत्याख्यान, ममत्वत्याग, देव के प्रति उपालम्भ, शुभ भावना, अरहंत आदि का स्मरण तथा समाधिमरण के अङ्गों की चर्चा है। इसी नाम के तृतीय प्रकीर्णक में एकहत्तर गाथाएँ हैं। इसमें मुख्य रूप से बालपण्डितमरण और पण्डितमरण ऐसे दो प्रकार के समाधिमरणों की चर्चा की गयी है। इसमें प्रथम चार गाथाओं में देशव्रती श्रावक के लिए बालपण्डितमरण का विधान है। जबकि मुनि के लिए पण्डितमरण का विधान है। इसमें उत्तम अर्थ समाधिमरण की प्राप्ति के लिए किस प्रकार के ध्यानों (विचारों) की आवश्यकता है, इसकी चर्चायें हैं। इसके पश्चात् सब पापों के प्रत्याख्यान के साथ आत्मा के एकत्व की अनुभूति की चर्चा भी है। अन्त में आलोचनादायक और आलोचनाग्राहक के गुणों की चर्चा करते हुए तीन प्रकार के मरणों की चर्चा की गई है— बालमरण, बालपण्डितमरण, पण्डितमरण। इसके पश्चात् असमाधिमरण के फल की चर्चा की गयी है और फिर यह बताया गया है कि बालमरण और पण्डितमरण क्या है? शस्त्र-ग्रहण, विष-भक्षण, जल-प्रवेश, अग्नि-प्रवेश आदि द्वारा मृत्यु को प्राप्त करना बालमरण है तथा इसके विपरीत अनशन द्वारा देहासक्ति का त्याग कर कषायों को क्षीण करना पण्डितमरण है। अन्त में पण्डितमरण की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावनाएँ और उसकी विधि की चर्चा है।

महाप्रत्याख्यान नामक प्रकीर्णक में १४२ गाथाएँ हैं। इसमें बाह्य एवं आभ्यन्तर परिग्रह का परित्याग, सर्वजीवों से क्षमा-याचना, आत्मालोचन, ममत्व का छेदन, आत्मस्वरूप का ध्यान, मूल एवं उत्तर गुणों की आराधना, एकत्व भावना, संयोग सम्बन्धों के परित्याग आदि की चर्चा करते हुए आलोचक के स्वरूप का भी विवरण दिया गया है। इसी प्रसङ्ग में पाँच महाव्रतों एवं समिति, गुप्ति के स्वरूप की चर्चा भी है। साथ ही साथ तप के महत्त्व को बताया गया है। फिर अकृत-योग एवं कृत-योग की चर्चा करके पण्डितमरण की प्ररूपणा की गयी है। इसी प्रसङ्ग में ज्ञान की प्रधानता का भी चित्रण हुआ है। अन्त में संसारतरण एवं कर्मों से निस्तार पाने का उपदेश देते हुए आराधना रूपी पताका को फहराने का निर्देश है। साथ ही पाँच प्रकार की आराधना व उनके फलों की चर्चा करते हुए धीरमरण (समाधिमरण) की प्रशंसा की गयी है।

संस्तारक प्रकीर्णक का विषय भी समाधिमरण ही है। इस प्रकीर्णक में १२२ गाथाएँ हैं। प्रारम्भ में मङ्गल के साथ-साथ कुछ श्रेष्ठ वस्तुओं और सद्गुणों की चर्चा है। इसमें कहा गया है कि समाधिमरण परमार्थ, परम-आयतन, परमकल्प और परमगति का साधक है। जिस प्रकार पर्वतों में मेरुपर्वत एवं तारागणों में चन्द्र श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सुविहित जनों के लिए संथारा श्रेष्ठ है। इसी में आगे १२ गाथाओं में संस्तारक के स्वरूप का विवेचन है। इस प्रसङ्ग में यह बताया गया है कि कौन व्यक्ति समाधिमरण को ग्रहण कर सकता है? यह ग्रन्थ क्षपक के लाभ एवं सुख की चर्चा करता है। इसमें संथारा ग्रहण करने वाले कुछ व्यक्तियों के उल्लेख हैं, यथा— सुकोशल ऋषि, अवन्ति-सुकुमाल, कार्तिकेय, पाटलीपुत्र के चंदक-पुत्र (सम्भवत: चन्द्रगुप्त) तथा चाणक्य आदि।

ज्ञातव्य है कि इसकी अधिकांश कथाएँ यापनीय ग्रन्थ भगवती आराधना में भी उपलब्ध होती हैं। विद्वानों से अनुरोध है कि संस्तारक एवं मरणविभक्ति में वर्णित इन कथाओं की बृहत्कथाकोश तथा आराधना कोश से तुलना करें। अन्त में संस्तारक की भावनाओं का चित्रण है। इसकी अनेक गाथाएँ आतुरप्रत्याख्यान एवं चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक में भी मिलती हैं।

श्वेताम्बर आगम साहित्य में समाधिमरण के सम्बन्ध में सबसे विस्तृत ग्रन्थ मरणविभक्ति है। वस्तुत: मरणविभक्ति एक ग्रन्थ न होकर समाधिमरण से सम्बन्धित प्राचीन आठ ग्रन्थों के आधार पर निर्मित हुआ एक सङ्कलन ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें इन आठ ग्रन्थों की गाथाएँ कहीं शब्द रूप में, तो कहीं भाव रूप से ही गृहीत हैं। फिर भी समाधिमरण सम्बन्धित सभी विषयों को एक स्थान पर प्रस्तुत करने की दृष्टि से यह ग्रन्थ अति महत्त्वपूर्ण है। इसमें ६६३ गाथाएँ हैं। यह ग्रन्थ संक्षिप्त होते हुए भी भगवती आराधना के समान ही अपने विषय को समग्र रूप से प्रस्तुत करता है। विस्तार भय से यहाँ इसकी समस्त विषय-वस्तु का प्रतिपादन कर पाना सम्भव नहीं है। इसमें १४ द्वार अर्थात् अध्ययन हैं। इस ग्रन्थ में भी संस्तारक के समान ही पण्डित-मरणपूर्वक मुक्ति प्राप्त करने वाले साधकों के दृष्टान्त हैं। जिनमें से अधिकांश भगवती आराधना एवं संस्तारक में मिलते हैं। इसी ग्रन्थ में अनित्य आदि बारह भावनाओं का भी विवेचन है।

इसके अतिरिक्त आराधनापताका नामक एक ग्रन्थ और है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। कुछ विद्वानों का ऐसा कहना है कि यह ग्रन्थ यापनीय ग्रन्थ भगवती आराधना के आधार पर आचार्य वीरभद्र द्वारा निर्मित हुआ है, किन्तु इस ग्रन्थ में भक्तपरिज्ञा, पिण्डनिर्युक्ति और आवश्यकनिर्युक्ति की अनेकों गाथाएँ भी हैं। अत: यह किस ग्रन्थ के आधार पर निर्मित हुआ है, यह शोध का विषय है।

इसी प्रकार श्वेताम्बर परम्परा में समाधिमरण से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ परवर्ती श्वेताम्बराचार्यों द्वारा भी लिखे गये हैं, जिनमें पूर्ण विस्तार के साथ समाधिमरण सम्बन्धी विवरण है, किन्तु ये ग्रन्थ परवर्तीकाल के हैं और हम अपने विषय को अर्धमागधी आगम साहित्य तक ही सीमित रखने के कारण इनकी विशेष चर्चा यहाँ नहीं करना चाहेंगे। यह समस्त चर्चा भी हमने सङ्केत रूप में ही की है। विद्वानों से अनुरोध है कि वे इस तुलनात्मक अध्ययन को आगे बढ़ायें। इस सम्बन्ध में अनेक आगमिक व्याख्या ग्रन्थ जैसे आचाराङ्गनिर्युक्ति, सूत्रकृताङ्गनिर्युक्ति, आवश्यकनिर्युक्ति, निशीथभाष्य, बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारभाष्य, निशीथचूर्णि आदि भी उनके उपजीव्य हो सकते हैं। इसी प्रकार आगमों की शीलाङ्क और अभयदेव की वृत्तियाँ भी बहुत कुछ सूचनायें प्रदान कर सकती हैं। उदाहरण के रूप में क्षपक अर्थात् संलेखना लेने वाले श्रमण के मरणोपरान्त देह को किस प्रकार विसर्जित किया जाये, इसकी चर्चा भगवती आराधना और निशीथचूर्णि में समान रूप से मिलती है। आशा है विद्वानों की आगामी पीढ़ी इस तुलनात्मक चर्चा को पूर्णता प्रदान करेंगी।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org